प्रवचन नं. ७३ गाथा-१५ दिनाङ्क ३०-०८-१९७८ बुधवार
श्रावण कृष्ण १२, वीर निर्वाण संवत् २५०४

समयसार, १५ वीं गाथा चलती है। फिर से टीका —

जो यह.... जो यह — ऐसा प्रत्यक्ष बताते हैं ऐसा। **जो यह अबद्धस्पृष्ट,....** यह आत्मा अन्तर्मुख चीज, वह **यह अबद्धस्पृष्ट...** राग और विसस्रा परमाणु से बद्ध और स्पृष्ट नहीं ऐसी यह चीज है। **अनन्य** है। अन्य, अन्य गति में होना यह नहीं; एकरूप अनन्यस्वरूप है। **नियत....** है। पर्याय में हीनाधिकता अनेक प्रकार से अगुरुलघुगुण के आश्रय से आदि विशेषता-दशा पर्याय का स्वभाव है तो हीनाधिकता होती है परन्तु उससे रहित आत्मा नियत है, एकरूप निश्चय है। **अविशेष....** गुण के विशेषों-भेदरहित त्रिकाली एकरूप सामान्य है। आहाहा...! **असंयुक्त....** आकुलता से रहित (है।) आकुलता से सहित, वह पर्याय में है, द्रव्य में आकुलता से रहित ऐसा आनन्दस्वरूप भगवान **ऐसे पाँच भावस्वरूप....** आहाहा! इन पाँच भावों स्वरूप **आत्मा की अनुभूति है....** मुक्तस्वरूप भगवान सामान्यस्वरूप आनन्दस्वरूप ऐसे पाँच भावस्वरूप ऐसे आत्मा की अनुभूति (अर्थात्) उसके अनुसार-स्वभाव के अनुसार आनन्द का अनुभव होना, **वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है,....** आहाहा! गाथा बहुत सरस आयी है। रस, सरस, सरस अर्थात् आनन्द के रससहित की गाथा है। आहाहा!

क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।.... क्या कहते हैं? जो भावश्रुतज्ञान द्वारा अबद्धस्पृष्ट का अनुभव हुआ, वह भावश्रुतज्ञान... है? **आत्मा ही है।....** है पर्याय-वीतरागी भावश्रुतज्ञान पर्याय (है) परन्तु उसको यहाँ आत्मा कहा। राग नहीं। राग है, वह अनात्मा है, आहाहा! पाँच भावस्वरूप भगवान आत्मा अस्ति, सामान्य, अबद्ध-बद्ध और स्पृष्टरहित, मुक्त, नियत, एकरूप रहनेवाली चीज (है)। सामान्य अर्थात् विशेष-गुण के भेदरहित और आकुलता से रहित ऐसे भाव — पाँच भावस्वरूप भगवान आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मा की, उसके अनुसार करके अनुभूति होना, वीतरागी भावश्रुतज्ञान का परिणमन होना.... आहाहा! वह जैनशासन की अनुभूति है। आहाहा!

श्रोता : आत्मा स्वयं जैनशासन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा जैनशासन नहीं, आत्मा का अनुभव करना, वह जैन शासन है। आहाहा! क्या कहा? यहाँ तो अनुभूति — पर्याय को जैनशासन कहा है। भाव श्रुतज्ञान को जैन शासन कहा है। दूसरे प्रकार से कहें तो भगवान (आत्मा) पाँच भावस्वरूप है, उसका अनुभव, वह शुद्ध उपयोग है परन्तु यहाँ भावश्रुतज्ञान कहकर शुद्ध उपयोग का स्पष्टीकरण किया है। आहाहा! जो शुभ-अशुभ उपयोग है, उससे रहित भगवान आनन्दस्वरूप पाँच भावस्वरूप है। आहाहा! उसके सन्मुख होकर जो अनुभव हुआ, वह भावश्रुतज्ञान है, वह शुद्ध उपयोग है, वह जैनशासन है। आहाहा! समझ में आया?

चारों अनुयोगों में वीतरागता तात्पर्य कहते हैं तो वीतरागता तात्पर्य कैसे होता है? कि पाँच भावस्वरूप भगवान आत्मा की अनुभूति करे तो वीतरागता प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन, प्रथम यह पहले १४ वीं गाथा में आया परन्तु यह सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। सराग समकित और वीतराग समकित यह तो चारित्रमोह के दोष की अपेक्षा के भाव की अपेक्षा से कहा है। वस्तु-सम्यग्दर्शन तो वीतरागी पर्याय ही है। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ श्रुतज्ञान कहा, दर्शन की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन कहा, यह वीतरागी पर्याय कहा, यह जैनशासन का अनुभव है। आहाहा! समझ में आया?

अभी थोड़ा सूक्ष्म आयेगा प्रभु! आहाहा! **क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।....** श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा, भावश्रुतज्ञान स्वयं आत्मा है — ऐसा कहा। आहाहा! जो वीतरागी भावश्रुतज्ञान प्रगट हुआ..... द्रव्यश्रुत में तो यह कहा है, यह तो गाथा कहती है। इसलिए कोई कहे कि इसमें द्रव्यश्रुत की व्याख्या तो आयी नहीं, (तो) यह द्रव्यश्रुत — यह शब्द ही द्रव्यश्रुत है। समझ में आया? और द्रव्यश्रुत में यह कहा है कि भावश्रुतज्ञान से अपने आत्मा का अनुभव करना, वह जैनशासन, वह जैनधर्म, वह आत्मधर्म (है)। आहाहा! यह श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा है। शास्त्र का ज्ञान वह चीज नहीं, वह तो आत्मा का अन्दर आनन्दकन्द भावस्वरूप पाँच भावस्वरूप है, उस पर दृष्टि लगाने से जो भावश्रुतज्ञान हुआ, वह वीतरागी पर्याय है, उसे जैनशासन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

पाठ में (गाथा में) तीन बोल हैं परन्तु टीकाकार ने पाँच बोल जो (गाथा) १४ में थे, वे ले लिये हैं। वे तो विवाद-विरोध करते हैं, यह दस (संवत् २०१०) साल में विवाद

आया था, जुगलकिशोर की तरफ से, दिल्ली — जुगलकिशोर (मुख्तयार) थे न, उतरे थे न उनका मकान है, हम उनके मकान में उतरे थे (वे) सुनने को आते थे परन्तु यह चीज.... बाद में दस की साल में ऐसा आया कि यहाँ तीन ही बोल है। अनन्यं, अविशेषं, अबद्धस्पृष्टं — यहाँ तीन बोल हैं। पाँच बोल कहाँ से निकाले ? परन्तु भैया ! ये तीन बोल गाथा में सम्यग्ज्ञान की बात करना है, तो अपदेसश्रुतं यह द्रव्यश्रुत भी कहना है तो इस कारण तीन में पाँच समा जाते हैं। समझ में आया ? यहाँ कहते हैं, आहाहा ! यह **श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।....**

इसलिए ज्ञान की अनुभूति ही.... ज्ञान क्या ? भगवान ज्ञायकस्वभाव जो कायम, त्रिकाली ज्ञानस्वभाव, उसकी अनुभूति — वर्तमान भावश्रुत, वह आत्मा की अनुभूति है। आहाहा ! समझ में आया ? **परन्तु अब वहाँ,.....** अब वहाँ **सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना)....** वह क्या कहते हैं ? जो आत्मा ज्ञानस्वभाव है, उसका अनुभव करना यह आविर्भाव ज्ञानस्वभाव सामान्य जो त्रिकाल है, उसका अनुभव इसमें करना, सामान्यज्ञान का अनुभव, वह पर्याय, सामान्यज्ञान है। क्या कहते हैं जरा ? सामान्यज्ञान के आविर्भाव, वह सामान्यज्ञान अर्थात् जो ज्ञायकस्वरूप है, उसकी यथार्थ में इन्द्रिय के ज्ञान के विषय का अनेकाकार ज्ञान होता है, उससे रहित... यह यहाँ पर्याय की बात है। यह पर्याय की बात है सामान्य ज्ञान-त्रिकाली की यहाँ बात नहीं है।

श्रोता : सामान्य किसे कहना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सामान्य अर्थात् इन्द्रिय के विषय का होने से अनेकाकार ज्ञान, उससे रहित अकेले आत्मा का ज्ञानस्वरूप भगवान... पर्याय में अकेले ज्ञान का अनुभव होना, वह... वह... ज्ञान पर्याय का, उसे सामान्य ज्ञान कहते हैं। यहाँ सामान्य-त्रिकाल की बात नहीं है। यह तो पहले कह दिया है कि पाँच भावस्वरूप है, वह तो त्रिकाल है। समझ में आया ? आहाहा !

सामान्य ज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना).... यह अर्थात् अकेले ज्ञान की आत्मा की शुद्धपर्याय का प्रगट होना, आहाहा ! उसे सामान्य ज्ञान का आविर्भाव कहा जाता है। सामान्य का अर्थ द्रव्य सामान्य का आविर्भाव — ऐसा नहीं है। सामान्य का अर्थ ?

विशेष प्रकार के जो राग आदि होता है या इन्द्रिय का विषयरूप अनेकाकार ज्ञान का भेद होता है, उससे रहित उसका नाम सामान्य ज्ञान का आविर्भाव कहा जाता है। यह पर्याय है, हाँ! आहाहा!

श्रोता : पर्याय को ही सामान्य कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सामान्य कहा न, कि विशेष जो ज्ञेयाकार से रहित, इसलिए अकेले ज्ञान का अनुभव वह सामान्य ज्ञान का अनुभव। सामान्य अर्थात् द्रव्य यहाँ नहीं लेना है। यह ज्ञान ही अपने स्वभाव से अनुभव करे, अपनी पर्याय में, उसका नाम सामान्य ज्ञान का आविर्भाव है। आहाहा!

सामान्य ज्ञान त्रिकाली का आविर्भाव यह प्रश्न यहाँ नहीं है। समझो प्रभु! यह तो बात अलौकिक बात है, नाथ! जैन शासन कोई अलौकिक वस्तु है। आहाहा! यह अबद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावस्वरूप प्रभु, वह त्रिकाली सामान्य कहा। अब उसका अनुभव पर्याय में, इन्द्रिय के विषय से अनेकाकार-ज्ञेयाकार जो पर्याय होती है, वह विशेष है, उससे रहित-उससे रहित अकेले ज्ञायकस्वभाव की पर्याय, अनेकाकार ज्ञानविशेष से रहित, अकेले ज्ञानस्वभाव का आकार पर्याय में पाना, वह सामान्यज्ञान का आविर्भाव है। आहाहा! समझ में आया? है अन्दर देखो!

हमारे पण्डितजी बैठे हैं यहाँ। ये कहें उसमें लिखा नहीं या उसमें लिखा है? आहाहा! ज्ञानचन्दजी! क्या कहते हैं सुनो! यहाँ सामान्य और विशेष दो प्रकार होते हैं तो यह सामान्य जो त्रिकाल है, उसकी बात यहाँ नहीं है। अकेला ज्ञायकस्वभाव पर्याय में अनुभव में आना, अनेकाकार विषय से जो अनेकाकार ज्ञान का भाव होता है, वह विशेष है। उससे रहित अकेले ज्ञान का पर्याय में अनुभव आना, वह सामान्यज्ञान का आविर्भाव है। आहाहा!

फिर, यह तो अलौकिक मार्ग है प्रभु! आहाहा! तो अब वहाँ सामान्यज्ञान, ज्ञान की — आत्मा की निर्मल पर्याय एकाकार होना, वह सामान्यज्ञान का आविर्भाव है। आत्मा का ज्ञायकभाव में एकाकार होकर जो ज्ञान की पर्याय, पर के आश्रय बिना, भेदरहित, अभेद से उत्पन्न हुई, वह सामान्यज्ञान (है)। समझ में आया? इस अकेले आत्मा का अनुभव

पर्याय में होना, वह सामान्यज्ञान है। इस पर्याय को सामान्य ज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह जैनशासन! यह भावश्रुत!! आहाहा! समझ में आया? **सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना)**..... पर्याय में विशेषपने एकरूप स्वभाव का पर्याय में अकेले आत्मा के आश्रय से जो अनुभव हो, उसका नाम सामान्यज्ञान कहते हैं। आहाहा!

श्रोता : तब वह ज्ञान हुआ ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञानपर्याय प्रगट हुई स्व के आश्रय से, भेदरहित, उस पर्याय को सामान्य ज्ञान प्रगट हुआ — ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। कहो, गाथा बहुत अच्छी आयी है। ११, १२, १३, १४, १५ (गाथाएँ अलौकिक हैं)। प्रभु! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

यहाँ जैनशासन, वह भावश्रुतज्ञान अथवा वीतरागी पर्याय, यह जैनशासन है। तो उस वीतरागी पर्याय को यहाँ सामान्यज्ञान कहा है, त्रिकाली को नहीं। त्रिकाली के अवलम्बन से एकरूप, पर का आश्रय लिये बिना जो सम्यग्ज्ञान की पर्याय हुई, उसका नाम सामान्यज्ञान प्रगट हुआ — ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? गाथा गम्भीर है। आहाहा! एक बात।

और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के तिरोभाव (आच्छादन).... देखो! इन्द्रिय के विषय से जो अनेकाकार विशेषज्ञान पर्याय है उससे रहित.... है? **ज्ञान के तिरोभाव....** उसका ढंक जाना, आहाहा! इन्द्रियों के विषय से जो ज्ञान हुआ, उसका अनेकाकार विशेष है, उससे रहित, है? **(आच्छादन)....** — यह विशेष ज्ञान से ढँक दिया — विशेष ज्ञान को ढँक दिया और सामान्य पर्याय, वीतरागी (पर्याय) उत्पन्न हुई, उसका नाम सामान्यज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के तिरोभाव....** वर्तमान इन्द्रिय का विषय-इन्द्रिय ज्ञान के विशेष विषय से, इन्द्रिय ज्ञान में विषय के विशेष से जो ज्ञान होता है, वह विशेष है। विशेष का अर्थ मिथ्या है, वह सत्य नहीं; अपना सम्यग्ज्ञान जो जैनशासन की अनुभूति वह (यह) ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो धीरजवान का काम है, बापू! आहाहा!

भगवान पाँच भावस्वरूप, पहले कहा, वह तो त्रिकाली (की) बात ली, परन्तु

उसका जो अनुभव-उस द्रव्य सामान्य का अनुभव होना, वह सामान्यज्ञान है। वह अनुभव होना वो सामान्यज्ञान है, जिसमें विशेष ज्ञेयाकार का अभाव है। अपने ज्ञानस्वभाव का अकेला अनुभव हुआ... आहाहा! समझ में आया? पाटनीजी! जिसमें पाँच भावस्वरूप भगवान वह तो द्रव्य-वस्तु कहा, उसका अनुभव वह सामान्यज्ञान....

श्रोता : एकाकार ज्ञान?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अकेला, पर की अपेक्षा बिना हुआ न? एकाकार अर्थात् उसे सामान्य ज्ञान कहा। क्या कहा? यह तो विशेष स्पष्ट हुए बिना समझे नहीं। इसलिए इसमें कुछ पुनरुक्ति नहीं लगती। यह भगवान आत्मा जो मुक्तस्वरूप, सामान्यस्वरूप, नियत-निश्चयस्वरूप... आहाहा! आकुलता के भावरहित आनन्दस्वरूप प्रभु — ऐसे पाँच भावस्वरूप प्रभु स्वयं आत्मा है। उसको ज्ञेयाकार के विशेष से छूटकर अकेले ज्ञायकस्वभाव के ज्ञानाकार होना, भावश्रुतरूप होना, शुद्ध उपयोगरूप होना, वह सामान्यज्ञान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : सामान्यज्ञान का नमूना आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नमूना आया अन्दर। वह सामान्य, यह प्रश्न अभी नहीं है।

यहाँ सामान्य अर्थात् अकेले ज्ञायकस्वभाव के अवलम्बन से, इन्द्रिय के विषय से रहित-इन्द्रिय के विषय से अनेकाकार ज्ञान होता था, वह विशेषज्ञान है। इस विशेषज्ञान का अर्थ? वह मिथ्याज्ञान। आहाहा! और भगवान आत्मा पाँच भावस्वरूप प्रभु तो द्रव्य, वह तो सामान्यद्रव्य (है)। अब उस सामान्यद्रव्य में उस द्रव्य के अवलम्बन से भावश्रुतज्ञान जो हुआ, वीतरागी पर्याय हुई, उस पर्याय को यहाँ सामान्यज्ञान कहते हैं। आहाहा! है? देखो अन्दर! अभी विशेष स्पष्टीकरण आयेगा।

श्रोता : ज्ञेयाकार ज्ञान मिथ्या होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का अनेकाकार इन्द्रियज्ञान का विषय अनेकाकार ज्ञान, वह वास्तविक ज्ञान है ही नहीं अर्थात् विशेषज्ञान का ढँक जाना और अकेला आत्मा के अवलम्बन से जो भावश्रुतज्ञान हुआ — वीतरागी पर्याय हुई, इसे सामान्यज्ञान का आविर्भाव कहा जाता है। आहा! और विशेषज्ञान का ढँक जाना — इन्द्रिय का ज्ञान जो पर का विषय

करता है, उस अनेकाकार का ढँक जाना होता है, उस अनेकाकार का ढँक जाना और एक ज्ञायकस्वभाव की एकाकार की पर्याय उत्पन्न होना, उसका नाम सामान्यज्ञान है ! है या नहीं भाई ! अभी आयेगा विशेष स्पष्ट !

और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के.... देखो ! विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान, ज्ञेयाकार जो इन्द्रियों के विषय, ज्ञेयाकार ज्ञान उसका ढँक जाना, अनीन्द्रियज्ञान का अन्दर उत्पन्न होना, उस ज्ञान को सामान्य कहते हैं और इन्द्रियज्ञान से जो ज्ञान होता है, उसे विशेष कहते हैं, यह ज्ञान मिथ्या है। ढँक जाना। आहाहा ! ऐसी बात है, प्रभु ! क्या हो ? आहाहा ! समझ में आये ऐसा है ! भाषा जरा सादी है, भाषा ऐसी कठिन नहीं, कोई संस्कृत (आदि नहीं) और भाव तो है वह है, भगवान ! क्या हो ?

पर के — इन्द्रियज्ञान के विषय से हुआ अनेकाकार ज्ञान, उसका लक्ष्य छोड़कर... आहाहा ! अकेले आत्मस्वरूप भगवान पाँच भावस्वरूप में से जो ज्ञान हुआ, वह सामान्यज्ञान कहा जाता है। पर्याय को सामान्यज्ञान कहा जाता है, वीतरागी पर्याय को — भावश्रुतज्ञान को सामान्यज्ञान कहा जाता है। आहाहा ! है ?

श्रोता : क्यों ? क्यों कहा जाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि वह वस्तु पर के — इन्द्रिय के ज्ञान के आकार से रहित एकाकार ज्ञान का आकार है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप जो त्रिकाल पाँच भावस्वरूप कहा, उसका एकाकार हुआ, उसके एक द्रव्य के आकार एकाकार ज्ञान हुआ, एकाकार ज्ञान हुआ, वह सामान्यज्ञान कहा जाता है। आहाहा ! ऐसी बात है।

कहो, गोदिकाजी ? इसमें कहीं नीलम-फिलम में मिले ऐसा नहीं है, वहाँ कहीं, भटकाभटक करते हैं जहाँ-तहाँ, यहाँ अन्दर में जाना है — ऐसा कहते हैं। ऐ...ई... ! यह फिर अधिक करोड़पति है। धूल... धूल... आहाहा !

यहाँ तो भगवान पाँच (भाव) स्वरूप, प्रभु !... आहाहा ! आचार्य की शैली तो देखो। आहाहा ! भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप, सामान्यस्वरूप, नियतस्वरूप, राग-आकुलता से रहित आनन्दस्वरूप, इन पाँच भावस्वरूप भगवान आत्मा है। उसके आश्रय से जो एकाकार ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे यहाँ सामान्यज्ञान कहा जाता है। सामान्य का ज्ञान हुआ

इसलिए सामान्यज्ञान — ऐसा नहीं है। उसे एकाकार स्वभाव का ज्ञान हुआ, इसलिए उस ज्ञान को सामान्यज्ञान कहा जाता है, उस ज्ञान को भावश्रुत कहा जाता है, उस ज्ञान को वीतरागी पर्याय कहा जाता है, उस ज्ञान को जैनशासन कहा जाता है। जैनशासन द्रव्य नहीं, भाव (अर्थात् पर्याय है)। आहाहा! समझ में आया? पुस्तक है न सामने? आहाहा!

सामान्यज्ञान के आविर्भाव.... आहाहा! ११ वीं गाथा में एक आया है, वहाँ ऐसा आया है कि जहाँ ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव ही त्रिकाल है परन्तु उसका अनुभव हुआ, तब ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ, ऐसा पाठ ११वीं में है। यह ज्ञायकभाव आविर्भाव (नहीं होता।) ज्ञायकभाव तो ज्ञायक ही है परन्तु पर्याय में भान हुआ तो ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ — ऐसा ख्याल में आया कि यह ज्ञायकभाव, उसे आविर्भाव हुआ ऐसा कहा जाता है। ज्ञायक तो त्रिकाल ज्ञायक है, ज्ञायक में आविर्भाव तिरोभाव है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ११वीं गाथा में है। ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ। ज्ञायकभाव तिरोभूत होता था? ज्ञायकभाव तो ज्ञायक है त्रिकाल है। उसमें आविर्भाव और तिरोभाव ज्ञायकभाव में है ही नहीं, परन्तु वह ज्ञायकभाव है — ऐसा अनुभव में आया, तब ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ — ऐसा कहा जाता है।

दृष्टि में उसका स्वीकार हुआ। पहले यह ज्ञायकभाव है — ऐसा (दृष्टि में) नहीं था। तो ज्ञायकभाव ध्रुव — ऐसा स्वीकार आया तो उस पर्याय में ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ, पर्याय में जानने में आया इसलिए (आविर्भाव हुआ) ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! यह ११ वीं गाथा का.... आहाहा! और इन्द्रियज्ञान के विषय में जब पड़ा है, उसको ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है, उसके ख्याल में नहीं आया, वह तिरोभाव हुआ। ज्ञायकभाव वस्तु तो वस्तु है। आविर्भाव और तिरोभाव ज्ञायकभाव में नहीं होता। वह तो त्रिकाल शुद्धज्ञायकभाव ही है परन्तु पर्याय में ख्याल में नहीं आया, तब वह ज्ञायकभाव उसे तिरोभूत हो गया, ढँक गया, उसकी दृष्टि में (ढँक गया)। समझ में आया? आहाहा! क्या मार्ग प्रभु का! यह (आत्मा) प्रभु स्वरूप, भगवान परमेश्वरस्वरूप ही है। परमेश्वरस्वरूप यह आत्मा, वीतरागस्वरूप कहो, परमेश्वरस्वरूप कहो, प्रभुस्वरूप कहो, यह तो वस्तु है। अब इस वस्तु के आश्रय से जो ज्ञान प्रगट हुआ, उस ज्ञान को पर आश्रय का अभाव है,

इन्द्रिय के विषय का अनेकाकार ज्ञान-विशेष का अभाव है, तिरोभूत है और यह सम्यग्ज्ञान जो सामान्य एकरूप पर्यायभूत वह प्रगट है, वह आविर्भाव हुआ। तिरोभूत — ज्ञेयाकार से.... अनेक उसको तिरोभूत है, उसके ज्ञान है नहीं, उसमें ऐसा। सामान्यज्ञान में, इन्द्रिय से — इन्द्रियज्ञान के विशेष से अनेकाकार का ज्ञान, सामान्यज्ञान में है नहीं। सामान्यज्ञान क्या? अनुभव की पर्याय हुई, वह सामान्यज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

गाथा बहुत ऊँची है, यह तो पूरा जैनशासन बतलाती है। आहाहा! जैनशासन कोई सम्प्रदाय नहीं, कोई पक्ष नहीं। वह वस्तु जो वस्तु जो पाँच भावस्वरूप है, वस्तु, उसका अनुभव वह भावश्रुतज्ञान, वह जैनशासन, वह वस्तु का स्वरूप। आहाहा! पर्याय में ख्याल में आया तब वस्तु है — ऐसी प्रतीति हुई, ख्याल में नहीं था तो वस्तु तो उसको है ही नहीं। समझ में आया? यह प्रश्न हुआ था, अभी दो-तीन वर्ष पहले (यह प्रश्न हुआ था) एक वीरजी वकील थे, यहाँ काठियावाड़ में दिगम्बर का अभ्यास पहले वीरजीभाई को (था)। ९१, ९२ वर्ष में स्वर्गस्थ हो गये। पूरे काठियावाड़ में पहले दिगम्बर के अभ्यासी, उनका लड़का है, उसने प्रश्न किया कि महाराज! यह आत्मा कारणपरमात्मा है तो कार्य क्यों नहीं आता है, कारण है तो कार्य आना ही चाहिए — ऐसा प्रश्न किया। भगवान आत्मा को इन पाँच भावस्वरूप है, वह कारणपरमात्मा है। समझ में आया? अरे! यह कारणपरमात्मा नियमसार में आता है, तो कारणपरमात्मा वस्तु है, तब तो कार्य तो आना चाहिए? मैंने कहा — ठीक है परन्तु कारणपरमात्मा है — ऐसा जिसको स्वीकार है, स्वीकार है उसको कारणपरमात्मा है तो उसे कार्य-सम्यग्दर्शन आये बिना नहीं रहता परन्तु कारणपरमात्मा है। इसका स्वीकार ही नहीं तो उसे कारणपरमात्मा कहाँ आया? समझ में आया? वह तो — भगवान तो है ही परन्तु है, उसकी प्रतीति में और ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयरूप आवे तो उसको कारणपरमात्मा है; तो कारणपरमात्मा है — ऐसी प्रतीति आयी तो सम्यग्दर्शन कार्य हुए बिना रहे नहीं परन्तु कारणपरमात्मा है — ऐसा स्वीकार करे, और कारणपरमात्मा है — ऐसा उसको बैठे, तब कार्य होता है। आहाहा! समझ में आया?

बहुत प्रश्न चला था, यहाँ तो सूक्ष्म बात बहुत चलती है न, लोग अभ्यास तो बहुत करते हैं। कारणपरमात्मा है, वह ज्ञायकभाव त्रिकाल है परन्तु ज्ञायक भाव है, उसकी

जिसको अस्ति है — ऐसा श्रद्धाज्ञान में स्वीकार हुआ उसको कारणपरमात्मा है, जिसको यह श्रद्धा-ज्ञान में स्वीकार नहीं, उसको कारणपरमात्मा दृष्टि में कहाँ से आया ? समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई ! बहुत सूक्ष्म, भाई !!

श्रोता : स्वीकार न करे तो कारणपरमात्मा कहीं चला जाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ है ? उसे तो राग और पर्याय है तो उसको कारणपरमात्मा श्रद्धा में कहाँ है ? समझ में आया ? पर्यायदृष्टिवान् को द्रव्य ऐसा है — ऐसा आया कहाँ से ? आहाहा ! एक समय की पर्याय व्यक्त है और राग है, वही उसकी दृष्टि में है तो उसमें कारणपरमात्मा आया कहाँ से ? ऐसे है तो, है उसको आया कहाँ से यहाँ ?

श्रोता : लोहे का पारसमणि स्पर्श न करे तो पारस का पारसपना थोड़े ही खत्म हो जाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पारसमणि ! नहीं... नहीं... नहीं... उस कारण लोहा से पारसमणि का स्पर्श से लोहा सोना होता है ऐसा है नहीं, उसकी योग्यता से होता है। समझ में आया ? यह तो बहुत अलौकिक बातें हैं बापू ! यह तो भाषा तो ऐसी है न 'पारसमणि और सन्त को बड़ो आन्तरो जान, वोही लोहा को कंचन करे वोही अपने समान' — ऐसा श्लोक आता है। क्या कहा ? यहाँ तो सब बहुत देखा है, सब करोड़ों श्लोक देखे हैं, श्वेताम्बर के, दिगम्बर के (करोड़ों श्लोक देखे हैं)। सारी जिन्दगी, ७२ वर्ष से उसमें हैं। इसमें कहा है न 'पारसमणि और सन्त को बड़ी आन्तरो जान, पारसमणि और सन्त को बड़ी आन्तरो जान; वह पारसमणि लोहे को कंचन करे और सन्त आप-आप समान' आहाहा ! यह सन्त के समागम से समझे, उसे आप समान करते हैं — ऐसा कहा जाता है। यह श्लोक आता है न ?

पता है न, हमारे बहुत वर्ष से हमारे सम्प्रदाय में चलता था — ऐसा कहते — पारसमणि लोहा को (सोना करती है) पारसमणि नहीं बना सकती है। निमित्तरूप से भी वह लोहा सोनेरूप हो जाता है, पारसमणि नहीं होता और सन्त जो वीतरागी मुनि महाभगवान, आहाहा ! पंच परमेष्ठी, उसके अनुभव की बात वे कहते हैं और जो सुने तथा समझे तो अपनी दशा जैसी उसकी हो जाये। समझ में आया ? 'पारसमणि से, पारसमणि लोहा नहीं

करती, वह सोना करती है बस इतना!' आहाहा! और तीन लोक का नाथ भगवान वीतराग और वीतराग के सन्त का समागम और सेवा करे.... सेवा अर्थात् वे आज्ञा कहते हैं, वीतरागता प्रगट करे। उनकी आज्ञा वीतरागता प्रगट करने की है, सन्तों की वीतरागी शासन की सारे की, वीतरागी पर्याय प्रगट करने की आज्ञा है। उस आज्ञा की सेवा करे तो सन्त की सेवा कब कहने में आती है तो उसने जो आज्ञा की, वीतरागी पर्याय-वीतरागी पर्याय प्रगट करे तो सन्त की सेवा उसने निमित्त से की — ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो इस शब्द में जरा सामान्यज्ञान का प्रगटपना, अर्थात् एकाकार ज्ञान का एकाकार का होना और विशेष ज्ञान — अनेकाकार का ढँक जाना, यह सब ज्ञानमात्र का अनुभव किया, यह जब अकेले आत्मा ज्ञानस्वभाव का अनुभव ज्ञान की पर्याय में किया। ज्ञानमात्र, राग नहीं, भेद नहीं; **ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है, तब ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है,** देखो! समझ में आया? आहाहा!

जब ज्ञानमात्र का अनुभव.... पर्याय में एकाकार ज्ञान का अनुभव किया जाता है, **तब ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है....** तब पर्याय में सामान्यज्ञान का अनुभव होता है। आहाहा! **तथापि जो अज्ञानी हैं,....** देखो! **ज्ञेयों में आसक्त हैं,....** इन्द्रियज्ञान के विषयों में अनेकाकार हुए ज्ञान में आसक्त हैं। आहाहा! इन्द्रियज्ञान के विषयों में अनेकाकार हुए ज्ञान में जो आसक्त हैं। आहाहा! **ज्ञेयों में आसक्त हैं, उन्हें वह स्वाद में नहीं आता।....** देखो, आहाहा!

इन्द्रियज्ञान के विषयों से हुए अनेकाकार ज्ञान में जो आसक्त है, उसको आत्मा ज्ञानस्वरूप है और उसका स्वाद ज्ञानाकार का है — ऐसा स्वाद उसको नहीं आता। उसको तो राग और द्वेष का-अज्ञान का स्वाद आता है। आहाहा! विशेष, विशेष यहाँ क्या कहते हैं? पहले तो कहा कि विशेष आत्मा में है ही नहीं, वह तो सामान्य वस्तु की बात कही। सामान्य-अविशेष कहते हैं और अविशेष-सामान्य वह वस्तु, अब यहाँ विशेष अर्थात् क्या? कि इन्द्रिय के विषय में अनेकाकार हुआ ज्ञान, उसे ढँक दिया और उसका ज्ञान अनेकाकार में रुक गया, वह विशेषज्ञान। सब्जी की दृष्टान्त देंगे।

शाक, शाक कहते हैं ? क्या कहते हैं ? शाक, शाक, शाक द्वारा लवण का स्वाद आना, वह विशेष हुआ और लवण का स्वाद लवण द्वारा आना, वह सामान्य हुआ। समझ में आया ? यह दृष्टान्त देंगे, स्पष्ट समझाने को कि शाक, यह शाक खारा है — ऐसा कहते हैं न ? शाक बहुत खारा है, शाक खारा है ? शाक तो शाक है, खारा तो नमक है। उस नमक का स्वाद शाक द्वारा जिसको आया, वह विशेष हुआ और नमक का स्वाद नमक द्वारा आया, वह उसका सामान्य हुआ। आहाहा!

इसी प्रकार ज्ञान का स्वाद अपने अनुभव में सामान्य अर्थात् ज्ञान के एकाकारपने का स्वाद आया, वह ज्ञान का स्वाद और ज्ञेय का-अनेकाकार का स्वाद, वह राग और द्वेष का स्वाद, वह कर्मचेतना और कर्मफलचेतना का स्वाद.... आहाहा! समझ में आया ? और सामान्यज्ञान का वेदन आया, वह ज्ञानचेतना हुई। ज्ञानचेतना और विशेष जो प्रकार है, उसका वेदन वह कर्म और कर्मफलचेतना है। आहाहा! समझ में आया ?

श्रोता : ज्ञेयों में आसक्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रियों के ज्ञान के ज्ञेयों में आसक्त-लक्ष्य वहाँ ही है। वस्तु यहाँ है वह ख्याल भी नहीं है। बस, इन्द्रियज्ञान में लुब्ध-इन्द्रियज्ञान के विषय में अनेकाकार के हुए ज्ञान में लुब्ध... आहा! आहाहा! यह इन्द्रिय से जो ज्ञान... सुनने में आता है न, वह ज्ञान भी इन्द्रियज्ञान है, वह अनीन्द्रियज्ञान नहीं है। क्या कहा ? भगवान की वाणी सुनी और ज्ञान की पर्याय हुई, वह अनीन्द्रियज्ञान नहीं है। (समयसार) ३१ गाथा में कहा है, समयसार ३१ (गाथा) **जो इन्दिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।** इन्द्रिय जिणित्ता का अर्थ तीन प्रकार से लिया है, सन्त आचार्य अमृतचन्द्र ने, (१) द्रव्य इन्द्रिय यह जड़, (२) भावेन्द्रिय — एक-एक विषय को जाननेवाली भाव इन्द्रिय और (३) इन्द्रिय का विषय-चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब परिवार, देश, सबको इन्द्रिय कहा गया है। जड़ इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और उसके विषय को भी इन्द्रिय कहा गया है। पाठ में — टीका में लिया है। अमृतचन्द्राचार्य ने (टीका में लिया है) तीनों को जीते, आहाहा! इन तीनों का लक्ष्य छोड़कर, उससे जो श्रुत हुआ इन्द्रियज्ञान हुआ वह तो। भगवान ने कहा और सुना तो वह ज्ञान इन्द्रियज्ञान हुआ, क्योंकि वह इन्द्रिय का विषय है और उससे ज्ञान हुआ, वह इन्द्रियज्ञान है। आहाहा! यह क्या कहा ?

श्रोता : वह इन्द्रियज्ञान ज्ञेय है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भावेन्द्रिय में द्रव्य इन्द्रिय के निमित्त से और भगवान की वाणी के निमित्त से जो ज्ञान हुआ, वह इन्द्रियज्ञान है, वह विशेष है, वह आत्मा का ज्ञान नहीं है।

सूक्ष्म बात है भाई! बहुत कठिन काम है, वर्तमान में तो इतनी गड़बड़ होती है, कोई तत्त्व की-पूरी बात बदल डाली, बापू! यह तो वीतरागमार्ग तीन लोक के नाथ.... आहाहा! उनका मार्ग कैसा होगा ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भगवान और भगवान की वाणी को इन्द्रिय कहा है। (समयसार) ३१ वीं गाथा में (कहा है)। भगवान और उनकी वाणी को इन्द्रिय कहा है, पर है न ? तो द्रव्य इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और उसके विषय को तीनों को इन्द्रिय कहा है। उस इन्द्रियज्ञान जो ज्ञान होता है, वह विशेष अनेकाकार ज्ञान का-अनेकाकाररूप वह विशेष ज्ञान (है), वह सामान्यज्ञान नहीं है। वह आत्मा के अवलम्बन से विशेष जो ज्ञान होता है, वह सामान्यज्ञान, आत्मा के त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से विशेषज्ञान हुआ, उस विशेषज्ञान को यहाँ सामान्यज्ञान कहा है। आहाहा! अरे! समझ में आया ? और जो ज्ञेयों में आसक्त है। आहाहा! है ? वह वास्तव में तो श्रुत शब्द-भगवान की वाणी और भगवान का यहाँ ज्ञान हुआ, वह सब ज्ञेय है। वह अपना ज्ञान नहीं। आहाहा! इन ज्ञेयों में जो आसक्त है, इन्द्रिय से ज्ञान हुआ वह ज्ञेय, परज्ञेय है; वह स्वज्ञेय नहीं, (वह) अनीन्द्रिय स्वज्ञेय नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

भाई! यह तो वीतराग का मार्ग है, प्रभु! आहाहा! उसको समझने में बहुत प्रयत्न चाहिए। आहाहा! ऐसा कोई शास्त्र पढ़ लिया और वाँचन कर लिया, इसलिए ज्ञान हो गया — ऐसा नहीं है।

श्रोता : शास्त्र रचना हुई कैसे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं ? शास्त्र रचना जड़ से हुई है।

श्रोता : शास्त्र किसने बनाया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने बनाया ? किसी ने नहीं बनाया, जड़ से बना है। यह तो

अमृतचन्द्राचार्य अन्त में कहते हैं न, तीनों में — समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय में — कि हमने टीका बनायी — ऐसा मोह मत करो, हम तो ज्ञानस्वरूप में गुप्त हैं, वहाँ टीका की पर्याय में आये कहाँ से ? आहाहा !

बापू ! मार्ग अलग है, भाई ! और टीका से तुम्हें ज्ञान होता है — ऐसे मोह से मत नाचो। टीका परवस्तु है और उससे ज्ञान होता है, वह तो परज्ञेय का ज्ञान हुआ। आहाहा ! स्वज्ञेय का ज्ञान जो अन्तर के आश्रय से होता है, वह स्वज्ञान सामान्यज्ञान है, वह वीतरागी ज्ञान वह श्रुतज्ञान, भावश्रुत है। आहाहा !

श्रोता : सामान्य से विशेष बलवान होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ नहीं। यह विशेष का ज्ञान हो, सामान्यज्ञान होने के बाद जो अनेकाकार का ज्ञान हो तो ज्ञान हो परन्तु अपना है — ऐसी चीज नहीं है। आहाहा ! ज्ञानी को अपने स्वभाव के एकाकार से जो ज्ञान हुआ, वह सामान्यज्ञान और उसके बाद विशेष जो इन्द्रिय के ज्ञान है — ऐसा ख्याल में आता है; ख्याल में आता है परन्तु वह मेरा ज्ञान नहीं है। जैसे परज्ञेय ख्याल में आता है, तथापि वह परज्ञेय मेरा नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

इस प्रकार अनेकाकार इन्द्रियविषय का सामान्यज्ञान, जहाँ स्वरूप का भान हुआ तो उस ज्ञान में स्व-पर प्रकाशक ज्ञान हुआ, तो स्व का ज्ञान होने से सामान्यज्ञान प्रगट हुआ, उस ज्ञान को सामान्य कहा और वह ज्ञान, इन्द्रिय के विषय आदि को जाने, है परन्तु वह मेरी चीज नहीं है। आहाहा ! ऐसी बात है। गजब बात, बापू ! आहाहा ! तीन लोक के नाथ की वाणी कान में सुने, वह इन्द्रिय का, यह इन्द्रिय, भावेन्द्रिय भी इन्द्रिय और यह तीनों इन्द्रिय है। यह सामान्यज्ञान नहीं है। एकाकार आत्मा का ज्ञान से ज्ञान हुआ, वह नहीं है। यह तो ज्ञेय से हुआ, यह ज्ञेयाकार ज्ञान वह नहीं है। आहाहा !

सूक्ष्म बात है प्रभु ! यह तो गाथा आयी तब (स्पष्टीकरण होता है।) आहाहा ! पर सत्तावलम्बी ज्ञान... परमार्थवचनिका में आया है, परमार्थ वचनिका है न, बनारसीदास (कृत है)। अपने मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे रखा है, पीछे तीन लिये हैं, तो उसमें ऐसा लिया है, जितना परसत्तावलम्बी ज्ञान है, वह मोक्षमार्ग है — ऐसा ज्ञानी नहीं मानते। समझ

में आया ? आहाहा ! है उसमें, सब ख्याल है, यह तो एक बार पढ़ते हैं तो सब ख्याल में है न, मस्तिष्क में। परसत्तावलम्बी ज्ञान, निमित्त से ज्ञान हुआ; हुआ तो अपने में परन्तु उसमें निमित्त की सापेक्षता आयी तो वह परसत्तावलम्बी ज्ञान (है), उसे समकिती ज्ञानी मोक्षमार्ग नहीं मानते हैं। है ? यहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक है या नहीं ? यह क्या है ? यह है, देखो, परमार्थवचनिका में है, यहाँ है ऊपर, इसे पता है, आहाहा ! देखो, किसी प्रकार का ज्ञान, किसी प्रकार का आत्मा का ज्ञान.... ज्ञान ऐसा नहीं होता कि परसत्तावलम्बी ज्ञान बनकर मोक्षमार्ग साक्षात् कहे, यह नहीं। जो परसत्तावलम्बी ज्ञान हुआ निमित्त से, हुआ उपादान अपने से परन्तु उसमें निमित्त की अपेक्षा थी — ऐसे परसत्तावलम्बी ज्ञान को ज्ञानी मोक्षमार्ग नहीं कहते। यहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में है, तीनों चिट्ठियाँ डाली (छापी) है। क्योंकि हमको पहले जो मिली थी, बनारसीदासजी की तो वह पहले कहीं नहीं मिला था, बनारसीदासजी की चिट्ठी देखी, पहले ९० की, ९१ की साल। अरे ! ऐसी बात गुप्त रह गयी। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में इसे प्रकाशित करो। बनारसीविलास है, ग्रन्थ देखे हैं न सब, उसमें एक परमार्थवचनिका है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी टोडरमलजी की और उपादान निमित्त के दोहे भैया भगवतीदासजी के ! आहाहा !

भगवान पाँच भावस्वरूप... स्वरूप, यह प्रभु आत्मा उसका एक, एक का एकाकार ज्ञान जो हुआ, एक अवलम्बन से — स्व के अवलम्बन से जो एकाकार ज्ञान हुआ, वह जैन शासन है, वह सामान्यज्ञान है, वह श्रुतज्ञान है, वही वीतरागी पर्याय है। आहाहा !

और जितनी पर्याय पर के निमित्त से-अवलम्बन से... भले ज्ञान निमित्त से नहीं हुआ, अपने उपादान से हुआ परन्तु उस उपादान में निमित्त की सापेक्षता का भेद था। तो उस निमित्त से अपनी पर्याय में जो ज्ञान हुआ, वह परसत्तावलम्बी ज्ञान है, स्व-सत्तावलम्बी ज्ञान नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग न बैठे और इसे फिर ऐसा कहकर निकाल डालते हैं कि यह तो निश्चय की बातें और.... अरे प्रभु ! परन्तु निश्चय अर्थात् वह सत्य यह है। आहाहा !

यह कहा, देखो ! **ज्ञेयों में आसक्त हैं, उन्हें वह स्वाद में नहीं आता।.....** क्या कहते हैं ? इन्द्रियज्ञान के विषयों में अनेकाकार ज्ञान खण्ड-खण्ड होता है, (जो) उसमें

आसक्त है, उसको ज्ञानस्वरूपी भगवान त्रिकाल का पर्याय में स्वाद आना चाहिए (फिर भी) उसको स्वाद नहीं आता। क्या कहा ? समझ में आया ?

जो इन्द्रियज्ञान के विषयों में आसक्त है, उसको अतीन्द्रियज्ञान की पर्याय में स्वाद आना चाहिए, वह स्वाद उसको नहीं आता।

श्रोता : उसे अतीन्द्रिय ज्ञान होता ही नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो नहीं, इसलिए स्वाद नहीं आता। इसका अर्थ क्या हुआ, समझ में आया ? यहाँ तो अनुभव के साथ की अपेक्षा से बात की है। सामान्यज्ञान में आत्मा के आनन्द का स्वाद आया, वह श्रुतज्ञान है, वीतरागी पर्याय है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, और इन्द्रिय के आसक्त में जो ज्ञान है, उसमें रहता है उसको आत्मा का स्वाद नहीं आता। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को एकदम कठिन लगता है। ज्ञानचन्दजी! भगवान! मार्ग तो यह है। आहाहा! पहले उसका सच्चा ज्ञान तो करना पड़ेगा न ? और ज्ञान करने के बाद स्व का आश्रय लेना वह ज्ञान है। आहाहा! उसको यहाँ सामान्यज्ञान कहा है। आहाहा! सामान्य का ज्ञान, इसलिए सामान्य — ऐसा नहीं; उस ज्ञान में एकाकारपना है, इसलिए सामान्यज्ञान और ज्ञान में अनेकाकार विषय है, उसका नाम विशेषज्ञान है। समझ में आया ? आहाहा! एक घण्टा तो इसमें चला जाता है।

लो, **वह स्वाद में नहीं आता। यह प्रगट दृष्टान्त से बतलाते हैं :.....** दृष्टान्त कहते हैं। लोगों को ख्याल में आवे, इसलिए दृष्टान्त कहते हैं। **जैसे - अनेक प्रकार के शाकादि....** शाक, खिचड़ी, चावल में भी लवण (डालते हैं)। खिचड़ी में तो नमक डालते थे, अभी तो चावल में डालते हैं। चावल में नमक, रोटी में डालते हैं, सबमें डालते हैं। अब रोटी में, रोटी में तो डालते थे बाजरे की रोटी होती है न परन्तु अब तो रोटी में भी नमक डालते हैं। शाक में भी नमक, रोटी में भी नमक, रोटी (बाजरे की) में तो नमक डालते हैं, यहाँ कहते हैं कि यह भाषा ली न — शाक आदि शब्द लिया न ?

एक बार ऐसा (प्रसंग) बना था। श्रीमद् राजचन्द्र, राणपुर के पास एक गाँव है, हड़मताला है, वहाँ श्रीमद् राजचन्द्र आये थे। तो पाँच, पच्चीस, पचास लोग-मुमुक्षु आये थे तो ऐसा लौकी का शाक बाटके में आया। बाटका क्या कहते हैं ? कटोरी-कटोरी में

(आया तो देखकर बोले) भैया ! इसमें नमक बहुत है, लवण बहुत है, साहब ! आपने चखा तो नहीं न ? देखो ! अकेला लौकी का शाक पानी से बाफते हैं तो उसका रेशा नहीं टूटता, यह नमक विशेष पड़ा है तो लौकी के टुकड़े का रेशा टूट गया है। खाये बिना, हाँ ! रेशा समझते हैं ? वह लौकी का टुकड़ा सलग्न (पूरा) हो, सलग्न में तो नमक विशेष पड़ने से रेशा टूट जाता है। अकेले (पानी) में बाफे तो रेशा नहीं टूटता परन्तु विशेष नमक / लवण पड़ जाये तो यह एक सरीखी चीज है, उसमें टूट पड़ती है, रेशे टूट जाते हैं — ऐसा क्यों जाना ? चखो, क्योंकि गृद्धि नहीं थी तो उनको ख्याल में आ गया कि नमक विशेष है और गृद्धिवाले को नमक के विशेष का ख्याल नहीं आता। वह शाक खारी है, शाक खारी है, शाक खारी है (ऐसा मानता है)। आहाहा ! यहाँ तो दृष्टान्त देकर विशेष समझायेंगे।

लो, समय हो गया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)